1964F Ganesh Prasad Varni Ji

Shradhey Varni Ji (In Sanmati Sandesh, 1964?)

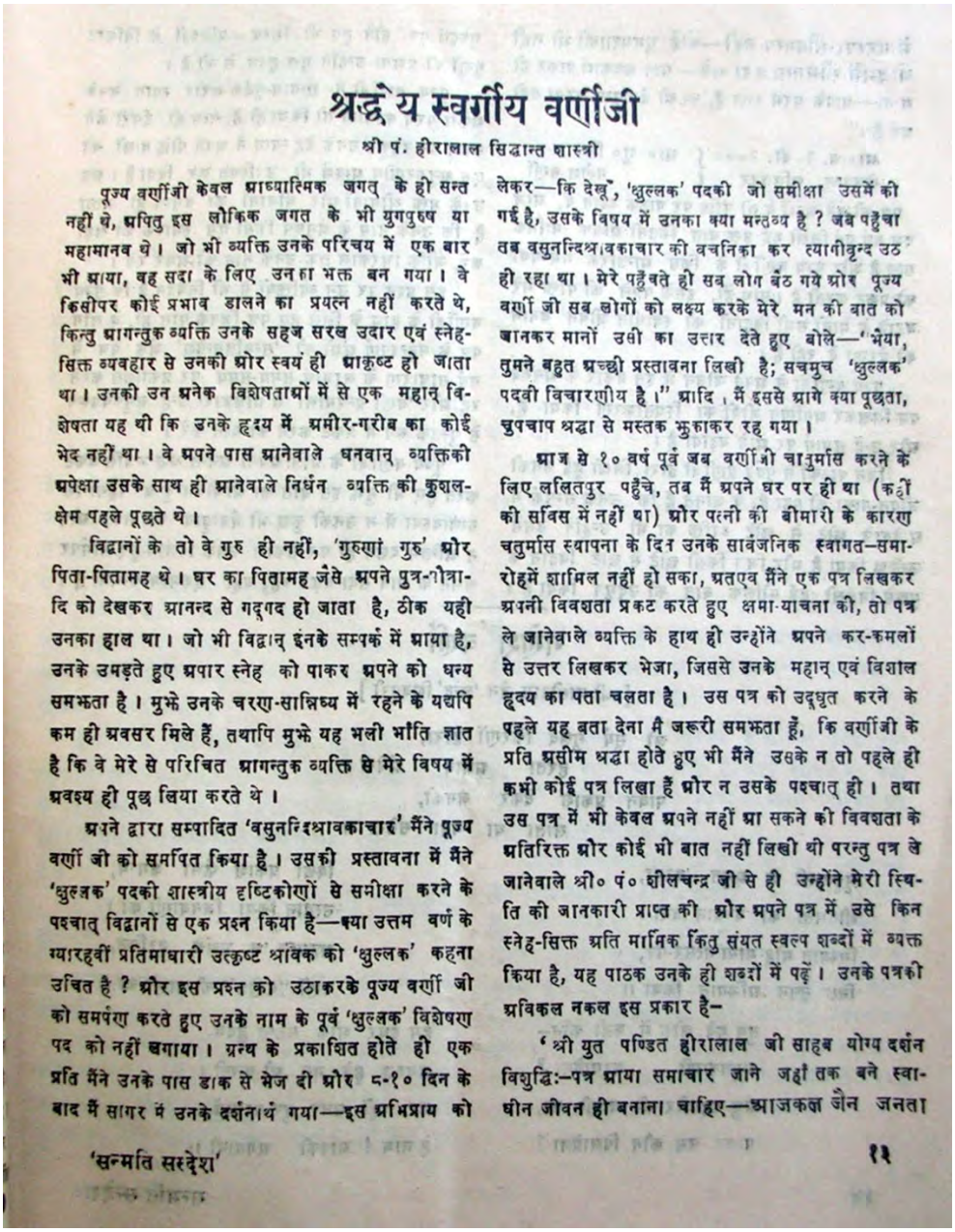

श्रद्धेय स्वर्गीय वर्णीजी

श्री पं. हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री

पूज्य वर्णीजी केवल आध्यात्मिक जगत् के ही सन्त नहीं थे, अपितु इस लौकिक जगत के भी युगपुरुष या महामानव थे। जो भी व्यक्ति उनके परिचय में एक बार भी आया, वह सदा के लिए उनका भक्त बन गया। वे किसीपर कोई प्रभाव डालने का प्रयत्न नहीं करते थे, किन्तु आगन्तुक व्यक्ति उनके सहज सरल उदार एवं स्नेह-सिक्त व्यवहार से उनकी ओर स्वयं ही आकृष्ट हो जाता था। उनकी उन अनेक विशेषताओं में से एक महान् विशेषता यह थी कि उनके हृदय में अमीर-गरीब का कोई भेद नहीं था। वे अपने पास आनेवाले धनवान् व्यक्तिकी अपेक्षा उसके साथ ही आनेवाले निर्धन व्यक्ति की कुशल-क्षेम पहले पूछते थे।

विद्वानों के तो वे गुरु ही नहीं, 'गुरुणां गुरु' और पिता-पितामह थे। घर का पितामह जैसे अपने पुत्र-पौत्रादि को देखकर आनन्द से गद्गद हो जाता है, ठीक यही उनका हाल था। जो भी विद्वान् इनके सम्पर्क में आया है, उनके उमड़ते हुए अपार स्नेह को पाकर अपने को धन्य समझता है। मुझे उनके चरण-सान्निध्य में रहने के यद्यपि कम ही अवसर मिले हैं, तथापि मुझे यह भली भाँति ज्ञात है कि वे मेरे से परिचित आगन्तुक व्यक्ति से मेरे विषय में अवश्य ही पूछ लिया करते थे।

अपने द्वारा सम्पादित 'वसुनन्दिश्रावकाचार' मैंने पूज्य वर्णी जी को समर्पित किया है। उसकी प्रस्तावना में मैंने 'क्षुल्लक' पदकी शास्त्रीय दृष्टिकोणों से समीक्षा करने के पश्चात् विद्वानों से एक प्रश्न किया है—क्या उत्तम वर्ण के ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक को 'क्षुल्लक' कहना उचित है? और इस प्रश्न को उठाकरके पूज्य वर्णी जी को समर्पण करते हुए उनके नाम के पूर्व 'क्षुल्लक' विशेषण पद को नहीं लगाया। ग्रन्थ के प्रकाशित होते ही एक प्रति मैंने उनके पास डाक से भेज दी और ८-१० दिन के बाद मैं सागर में उनके दर्शनार्थ गया—इस अभिप्राय को लेकर—कि देखूँ, 'क्षुल्लक' पदकी जो समीक्षा उसमें की गई है, उसके विषय में उनका क्या मन्तव्य है? जब पहुँचा तब वसुनन्दिश्रावकाचार की वचनिका कर त्यागीवृन्द उठ ही रहा था। मेरे पहुँचते ही सब लोग बैठ गये और पूज्य वर्णी जी सब लोगों को लक्ष्य करके मेरे मन की बात को जानकर मानों उसी का उत्तर देते हुए बोले—'भैया, तुमने बहुत अच्छी प्रस्तावना लिखी है; सचमुच 'क्षुल्लक' पदवी विचारणीय है।" आदि, मैं इससे आगे क्या पूछता, चुपचाप श्रद्धा से मस्तक झुकाकर रह गया।

आज से १० वर्ष पूर्व जब वर्णीजी चातुर्मास करने के लिए ललितपुर पहुँचे, तब मैं अपने घर पर ही था (कहीं की सर्विस में नहीं था) और पत्नी की बीमारी के कारण चतुर्मास स्थापना के दिन उनके सार्वजनिक स्वागत-समारोहमें शामिल नहीं हो सका, अतएव मैंने एक पत्र लिखकर अपनी विवशता प्रकट करते हुए क्षमा-याचना की, तो पत्र ले जानेवाले व्यक्ति के हाथ ही उन्होंने अपने कर-कमलों से उत्तर लिखकर भेजा, जिससे उनके महान् एवं विशाल हृदय का पता चलता है। उस पत्र को उद्धृत करने के पहले यह बता देना मैं जरूरी समझता हूँ, कि वर्णीजी के प्रति असीम श्रद्धा होते हुए भी मैंने उसके न तो पहले ही कभी कोई पत्र लिखा हैं और न उसके पश्चात् ही। तथा उस पत्र में भी केवल अपने नहीं आ सकने की विवशता के अतिरिक्त और कोई भी बात नहीं लिखी थी परन्तु पत्र ले जानेवाले श्री० पं० शीलचन्द्र जी से ही उन्होंने मेरी स्थिति की जानकारी प्राप्त की और अपने पत्र में उसे किन स्नेह-सिक्त अति मार्मिक किंतु संयत स्वल्प शब्दों में व्यक्त किया है, यह पाठक उनके ही शब्दों में पढ़ें। उनके पत्रकी अविकल नकल इस प्रकार है—

'श्री युत पण्डित हीरालाल जी साहब योग्य दर्शन विशुद्धिः—पत्र आया समाचार जाने जहाँ तक बने स्वाधीन जीवन ही बनाना चाहिए—आजकल जैन जनता

में परस्पर सौमनस्य नहीं—कोई पुण्यशाली भी नहीं जो इनमें सौमनस्य करा सके—आप अवकाश पाकर ही आना—आपके घरमें रुग्ण हैं, उसकी वैयावृत्य करना यही धर्म है।"

आ० व. ३. वी. २००८ { आ० शु० चि० —
क्षेत्रपाल, ललितपुर { गणेश वर्णी

पत्र की बड़े शब्दों वाली पंक्ति पर पाठक ध्यान दें, आज दश वर्ष पूर्व लिखी गई उक्त बात कितनी अधिक मार्मिक सत्य है और पूज्य वर्णीजी के किस आन्तरिक मर्मव्यथा को प्रकट करती है। साथ ही, इसके पहले की पंक्ति मेरे बहाने से मानों सभी विद्वानों को स्वाधीन जीवन बनाने की प्रेरणा दे रही है।

पूज्य वर्णीजी ने अपने जीवन में इस प्रकार के असंख्य पत्र लिखकर अगणित जीवों का स्थितीकरण किया है, और उन्हें सुमार्ग पर आगे बढ़ाया है।

जिन पाठकों ने पूज्य वर्णीजी द्वारा लिखी हुई उनकी जीवन-गाथा को पढ़ा है, वे जानते हैं कि उनके सम्पर्क में आनेवाले छोटे से छोटे व्यक्ति का भी उन्होंने उसमें उल्लेख किया है और जिस किसी छोटे से छोटे विद्वान के मुखसे निकली हुई मौलिक बात को उद्घृत किया है। गुरुणां गुरुः' होते हुए भी शिष्य—प्रशिष्यों के विशिष्ट गुणों की प्रशंसा उन्होंने मुक्त-हृदय से की है।

पूज्य वर्णीजी ने सन्यास-पूर्वक शरीर त्याग करके अपना परम कल्याण तो किया ही है, साथ ही ईसरी जैसे स्थान पर रहकर उनके देह-त्याग ने अपने पीछे वालों को एक अनुकरणीय आदर्श भी उपस्थित कर दिया है। अब उनके भक्त श्रीमानों और धीमानों का कर्तव्य हो जाता है, कि उनके नाम के अनुरूप किसी ऐसे स्मारक को खड़ा करें, जोकि चिरकाल तक उनके नाम को अमर रखे।

इस प्रश्न पर उन व्यक्तियों से भी निवेदन है कि पूज्य वर्णीजी के हाथ के लिखे हुए पत्र जिनके पास हों, वे लोग पत्र के महत्वपूर्ण अंशों को 'सन्मतिसन्देश' जैसे पत्र में सर्व साधारण के लाभार्थ समय-समय पर प्रकाशित करते रहें और 'वर्णी ग्रन्थमाला' से अधिकारी उन्हें समुच्चयरूप से पुस्तक रूप में प्रकट करने का यत्न करें।

पूज्य वर्णीजी के प्रति अपनी अनन्त श्रद्धांजलि प्रकट करते हुए भी मुझे इस बात का आजीवन दुःख रहेगा कि रुग्णावस्था में न उनकी कुछ भी वैयावृत्य कर सका और न अन्तिम दर्शन ही कर सका। उनके दिखाये हुए मार्गपर चलने के भाव सदा बढ़ते रहें, यही एकमात्र कामना है।